REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 7 | APRIL - 2019

परिवार कल्याण कार्यक्रम का प्रार्दुभाव और इसका सैद्धान्तिक परिपेक्ष्य (एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण)

नंदाणिया परबत वीरा
बी.ए., बी.एड., एम.ए., एम.फिल.

विश्व का प्रत्येक देश सामाजिक आर्थिक दृष्टि से उन्नति का आकांक्षी है। यह उन्नति एक यात्रिक प्रक्रिया नहीं है अपितु एक मानवीय उद्यम है। इसका प्रतिफल अन्तिम रूप से मानवीय गुणों उसकी कार्यकुशलता तथा उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। वास्तव में मानव आर्थिक विकास का साधन और साध्य दोनों है क्योंकि आर्थिक विकास का मूल साधन जनसंख्या (श्रम) है और आर्थिक विकास का अन्तिम उददेश्य जनसंख्या (मानव) की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि है। अतः बढ़ती हुई जनसंख्या आर्थिक विकास में सहायक होती है किन्तु अतिजनसंख्या बाधक होती है। भारत जैसे अर्द्धविकसित देशों में जहां आर्थिक संसाधनों के अभाव तथा उपलब्ध साधनों के कुशल प्रयोग की समस्या है, जनसंख्या वृद्धि विस्फोटक रूप धारण कर चुकी है। जनसंख्या वृद्धि के अनेक कारण प्रकाश में आये है किन्तु उनमें से प्रमुख कारण है : अशिक्षा, निर्धनता, रूढ़िवादिता तथा सामाजिक पिछड़ापन। अतः भारत की जनसंख्या वृद्धि में समाज के उन वर्गों का अधिक योगदान रहा है जो इन दुर्गुणों की काली छाया से अपेक्षाकृत अधिक ग्रस्त है। इस दृष्टि से श्रमिक वर्ग सबसे ऊपर आता है।

आर्थिक विकास में श्रमिक वर्ग की दोहरी भूमिका है। एक ओर तो यह अपने परिवार का आकार बढ़ाकर उपभोग हेतु मांग और उत्पादन हेतु श्रम पूर्ति बढ़ाता है तथा दूसरी ओर अपनी उच्च प्रजनन क्षमता के कारण अकुशल–श्रम, बेरोजगारी, निर्धनता आदि अनेक आर्थिक सामाजिक समस्याओं में भी वृद्धि करता है। अतः श्रम शक्ति का आर्थिक विकास में कुशलतम उपयोग तब ही किया जा सकता है जबकि जनसंख्या एवं परिवार के आकार के प्रति उसके दृष्टिकोण में आवश्यक परिवर्तन लाया जाये।

वास्तव में मनुष्य ने अपनी निरीक्षण शक्ति का उपयोग करके अपनी समस्याओं से सम्बन्धित कारणों को खोजा है तथा ज्ञान से उनका तादाम्य स्थापित करके सदैव उन पर विजय प्राप्त की है। अतः जनसंख्या नियन्त्रण की ओर श्रमिक वर्ग को जागरूक करना तथा उत्पन्न तत्परता को तत्काल स्वीकार्यता में परिवर्तित करना असम्भव नहीं है। इस संदर्भ में भारत सरकार ने सन 1952 में सामान्य परिवार कल्याण कार्यक्रम (पूर्व में परिवार नियोजन कार्यक्रम) लागू किया है। चूंकि यह कार्यक्रम स्वैच्छिक आधार पर लागू किया गया है इसलिए इसकी सफलता सरकारी प्रयासों पर कम, सामाजिक प्रयासों पर अधिक निर्भर करती है। सामाजिक प्रयास व्यक्ति के अन्तःकरण, अन्तःक्रिया तथा मनोविज्ञान द्वारा नियन्त्रितएवं संचालित होते है।यद्यपि व्यक्ति का मनोविज्ञान स्वतः अनेक बाह्य शक्तियों यथा आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक दबावों से निर्देशित होता है। यही कारण है कि सामाजिक–आर्थिक जीवन से सम्बन्धित अनेक गम्भीर समस्याओं का गहन प्रभाव श्रमिक वर्ग के सामान्य व्यवहार पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। अतः भारत में श्रमिकवर्ग की जनसंख्या वृद्धि का सम्बन्ध केवल उसकी व्यक्तिगत वैचारिक स्थिति से ही नहीं अपितु आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं जैविक स्थिति से भी है।

प्रत्येक राष्ट्र की आर्थिक प्रगति में श्रमिक वर्ग का विशेष महत्व होता है। क्योंकि, आर्थिक साधनों की प्रचुरता होते हुये भी बिना कुशल, सुरक्षित एवं संगठित श्रमिकों के आर्थिक विकास का होना असम्भव सा होता है। चाहे राष्ट्र की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान हो या औद्योगिक प्रधान, श्रमिक वर्ग का उतना ही महत्व होता है।

औद्योगिक प्रगति वाले देशों में न केवल औद्योगिक श्रमिकों का ही महत्व होता है बल्कि कृषि श्रमिकों का भी बहुत महत्व होता है, क्योंकि अधिकांश उद्योगों को कृषि से ही कच्चा माल प्राप्त होता है।

भारतवर्ष कृषि–प्रधान देश रहा है। यहां की अधिकांश जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर रहती आई है। औद्योगिक विकास तो अभी हाल ही की बात है। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से औद्योगिक जीवन का एक प्रकार से प्रारम्भ हुआ। अनेक कारणों से औद्योगिक प्रगति की गति यहां काफी धीमी रही है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद औद्योगिक प्रगति की गति में काफी वृद्धि हुई है और साथ ही साथ उन समस्याओं का भी प्रादुर्भाव हुआ है जो औद्योगिक श्रमिकों से सम्बन्धित हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारतवर्ष जब आर्थिक प्रगति के पथ पर आरूढ़ हुआ तब भारतीय श्रमिकों के महत्व ने एक नई करवट बदली। सरकार द्वारा यह माना जाने लगा कि भारत के भावी आर्थिक विकास में श्रमिकों को आवश्यक महत्व प्रदान करना अनिवार्य है। इन श्रमिकों के ऊपर ही भारत के करोड़ों व्यक्तियों का हित निर्भर है। इस विशाल जनसंख्या का न केवल भारतीय श्रमिक एक महत्वपूर्ण अंग है बल्कि राष्ट्रीय उददेश्यों की प्राप्ति के साधन के रूप में उसका एक विशेष महत्व है। इस दृष्टिकोण से देखा जाये तो ''भारतीय श्रमिक'' से हमारा तात्पर्य न केवल उन श्रमिकों से है जो मिलों में काम करते हैं, जिनकी संख्या लगभग 13 करोड़ होगी, बल्कि उन श्रमिकों से भी है जो कृषि में, बागान में, खान–उद्योग में, निर्माण–योजनाओं में, ग्रामीण और लघु उद्योगों में लगे हुये हैं।

सामान्य रूप से श्रमिक एक ऐसी जीवित वस्तु है जिसको श्रमिक से अलग नहीं किया जा सकता। श्रमिक एक विशेष अवधि के लिये अपने कार्य करने की क्षमता को बेच देता है, अपने को नहीं। लेकिन उसके कार्य करने की क्षमता, उसका श्रम नाशवान है। यदि किसी विशेष समय में श्रमिक अपने श्रम को काम पर नहीं लगाता तो उसके उस समय का श्रम नष्ट हो गया, वह लौट कर नहीं मिल सकता और न उसका कुछ मूल्य ही मिल सकता है। इसकी पूर्ति को एकाएक न बढ़ाया जा सकता है और न घटाया जा सकता है। श्रम की उत्पादकता भिन्न–भिन्न श्रमिकों में भिन्न–भिन्न होती है। यह पूंजी के बराबर गतिशील नहीं है। चूंकि श्रम श्रमिक के जीवन का एक अंग है इसको उस समाज के सामाजिक वातावरण से अलग नहीं किया जा सकता, जिसका वह एक सदस्य होता है। दूसरे शब्दों में श्रमिक पर सामाजिक परिस्थितियों का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। फलस्वरूप श्रमिकों की समस्याओं के अध्ययन में हमें आर्थिक और राजनैतिक तत्वों के अतिरिक्त सामाजिक, नैतिक और धार्मिक तत्वों का विचार करना होगा। भारतीय श्रमिक के साथ यह बात और भी सही उतरती है, क्योंकि आज के भारतवर्ष में लोगों के आर्थिक और राजनैतिक जीवन की अपेक्षा धार्मिक, सामाजिक और जनसंख्यात्मक जीवन का प्रभुत्व देखने को मिलता है।

गांव का अपना अलग वातावरण होता है और शहरों का अपना। गांव की विशेष परिस्थितियों, परम्पराओं, प्रथाओं रीति–रिवाजों में पला हुआ ग्रामीण जब शहर का श्रमिक बन जाता है तो आरम्भ में तो उसे शहर का सम्पूर्ण वातावरण कृत्रिम तथा बड़ा विचित्र सा मालूम पड़ता है। एक अपरिचित व्यक्ति की तरह वह शहर में अपना जीवन व्यतीत करता है। इस प्रकार का जीवन, स्वाभाविक ही है, फीका–फीका लगने लगता है। ऐसे में जब घर की याद आती है। गांव लौट चलने की इच्छा प्रबल हो जाती है। लेकिन काम छोड़कर कैसे जाये। यदि चला भी जाये तो पता नहीं कि लौटने पर काम मिलेगा या नहीं मिलेगा। गांव में जाये भी तो वहां गुजारा कैसे चलेगा, आर्थिक समृद्धि का स्वप्न कैसे पूरा होगा, महाजन का कर्ज कैसे उतरेगा, इत्यादि अनेकों विचार उसके मस्तिष्क को कौंधने लगते हैं। परिणाम स्वरूप वह मानसिक रूप से अस्वस्थ एवं उदासीन रहने लगता है। उसका किसी काम में जी नहीं लगता। धीरे–धीरे स्वास्थ्य गिरने लगता है तथा वह बीमारी का शिकार होकर खाट पर लेट जाता है। शहर में वहां किसी से परिचय न होने के कारण देखभाल कौन करे, दवा दारू कौन करें। जैसे–तैसे करके जब अच्छा होता है तो कार्यक्षमता अपेक्षाकृत कम हो जाती है। लेकिन घर की याद केवल शुरू–शुरू में सताती है। शहर का वातावरण शुरू–शुरू में विभिन्न सा लगता है। शीघ्र ही शहर के वातावरण से श्रमिक अपना अनुकूलनआरम्भ कर देता है, और तब शहर के वातावरण का उसके स्वास्थ्य, सन्तानोत्पादन, उसकी नैतिकता और उसकी कार्यक्षमता पर पूरा–पूरा प्रभाव देखने को मिलता है।

भारतवर्ष में चूंकि औद्योगिक विकास की गति बहुत धीमी रही है, इसलिये भारतवर्ष में औद्योगिक श्रमिकों के लिये उन सुविधाओं का भी विकास नहीं हो पाया है जो किसी भी पश्चिमीदेश के श्रमिक को प्राप्त हैं। उदाहरण के तौर पर, सबसे पहली सुविधारहने की व्यवस्था है। भारतवर्ष के लिये इस प्रकार की सुविधाका

महत्व कहीं अधिक इसलिये है कि यहां का श्रमिक गांवों से आता है और शहरों में वह कहां रहे। श्रमिकों के रहने, खाने–पीने, पहनने, परिवार के सुख के ऊपर उनका स्वास्थ्य, उनकी नैतिकता और उनकी कार्यक्षमता निर्भर करती है। भारतवर्ष में अंग्रेज उद्योगपतियों ने कभी भी श्रमिकों के लिये उनकी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति की समस्या के बारे में नहीं सोचा। चूंकि श्रमिकों की पूर्ति उनकी मांग की अपेक्षा कहीं अधिक थी, इसलिये भी उनका ध्यान इन समस्याओं की ओर नहीं गया। रोज–रोज तो गांव से आना और गांव को जाना सम्भव था नहीं, इसलिये कहीं न कहीं तो रात गुजारनी हुई। श्रमिक छोटी–छोटी बस्तियां बसा कर रहने लगे। इन बस्तियों में किसी प्रकार की सफाई या स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं का प्रश्न उठता ही नहीं था। छोटी–छोटी इन बस्तियों में एक–एक कमरे में कई–कई श्रमिक एक साथ गुजारा करते थे। एक दूसरे के साथ किसी प्रकार का पर्दा भी सम्भव नहीं होता था। इसका सीधा प्रभाव श्रमिकों की नैतिकता और उनके स्वास्थ्य पर पड़ता था। औद्योगिक विकास के साथ–साथ इन गंदी बस्तियों का भी विकास हुआ। रहने की समस्या ने श्रमिकों केनैतिक पतन में बड़ी सहायता की। परिवार को प्रायः नगरों में लाना सम्भव नहीं होता था। परिवार गांव में पड़ा रहता था और श्रमिक शहर की गन्दी बस्तियों में। काम से जब शाम को श्रमिक थका–मांदा घर लौटता था, तब वह, परिवार के अभाव में, और कहां जाये। उसके पैर स्वतः ही उसे वैश्या के कोठे पर ले गये और वहां पायल की झंकार में मनोरंजन के बहाने वह अपने दिन भर की कमाई को फूंक कर लौट आता।यदिवैश्या के पास न गया तो ताड़ी खाने पहुंच गया, क्योंकि दिन भर की थकान को दूर करने का इससे बढ़िया दूसरा कोई उपाय उसे न सूझता। गांव में वह अपना मनोरंजन नाच–नौटंकी, सामयिक मेलों, धार्मिक उत्सवों इत्यादि में करता था जो सामाजिक एकता के प्रतीक स्वरूप होते थे। लेकिन शहरों में मनोरंजन के वे साधन कहां। शहरों में सिनेमा घरों के विकास ने उनके मनोरंजन की दिशा ही बदल दी। दिन भर मिलों में काम करना और शाम को या रात को सिनेमा घरों में बैठ कर दिन–भर की कमाई को हवा में उड़ाना।

सिनेमा घरों से श्रमिक कितनी ही गन्दी आदतें लेकर लौटता, जो उसक`नैतिक जीवन को प्रभावित करती हैं। इसके अतिरिक्त नगरों में, देखा–देखी, श्रमिक और भी कितनी ही गन्दी आदतों का शिकार होता, जैसे सिगरेट पीना, जुआ खेलना इत्यादि।

इन सभी गन्दी आदतों का, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में, शहरों के दूषित वातावरण का परिणाम होती थीं। श्रमिकों के स्वास्थ्य और परिवार के नैतिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। श्रमिक अपनी पसीने की कमाई को अपने स्वास्थ्य पर खर्च करने की अपेक्षा अपनी गन्दी आदतों की तुष्टि में खर्च करता। गांव में तो घी दूध का सेवन करता था, गांव का स्वस्थ और स्वच्छ वातावरण तथा चिन्तामुक्त जीवन उसके जीवन को आशामय और स्वस्थ बनाये रखता था। शहरों का दूषित वातावरण एवं निराशापूर्ण जीवन, नीरस एवं आकर्षणहीन जीवन श्रमिक के जीवन को अस्वस्थ बनाने में सहायक होता है। न वह घी खाता है और न दूध। स्वस्थ और स्वच्छ वातावरण का तो प्रश्न ही नहीं उठता। औद्योगिक शहरों में शुद्ध हवा कहाँ।

पारिवारिक जीवन छिन्न–भिन्न हो जाने से भी स्वास्थ्य और नैतिकता पर काफी प्रभाव पड़ता है। श्रमिक के स्वास्थ्य और उसकी नैतिकता का सीधा सम्बन्ध उसकी कार्यकुशलता से होता है। किसी भी श्रमिक की कार्यकुशलता और बातों के साथ–साथ विशेष रूप से इन दो तत्वों पर अधिक निर्भर करती है। नैतिक पतन स्वास्थ्य खराब करता है और खराब स्वास्थ्य कार्य–कुशलता में कमी करता है। अपनी गन्दी आदतों के कारण श्रमिक कभी काम पर जाते हैं और कभी नहीं। इससे उनकी आय कम होती है, और आय कम होने से वह जीवन की मौलिक आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाता। कार्यक्षमता का कम हो जाना तब स्वाभाविक ही होता है। अन्त में, शहर का जीवन गांवों की अपेक्षा कहीं अधिक जटिल होता है। गांव में लोगों की थोड़ी सी आवश्यकतायें होती हैं जो आसानी से पूरी हो जाती हैं। लेकिन शहरों में लोग अनेक वस्तुओं का उपभोग करते हैं। श्रमिक भी उन बहुत सी वस्तुओं का उपभोग करने का आदी हो जाता है जिनका उसने पहले कभी नाम भी नहीं सुना था। लेकिन इन सब वस्तुओं का उपभोग करने के लिये साधन सीमित होते हैं।

इस सम्बन्ध में श्रम आयोग ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि ''शहरों की अपेक्षा गांवों के अधिक स्वास्थ्यप्रद वातावरण में पोषित होने के कारण ग्रामीण श्रमिकों का स्वास्थ्य अधिक उत्तम होता है। समय–समय पर गांव जाने से खोई हुई मानसिक और शारीरिक शक्ति फिर से लौट आती है। बीमारी और वृत्ति हीनता के अवसर पर गांव का घर एक शरण–स्थल का काम देता है। जिस प्रकार गांव के आर्थिक भार को नगर–प्रवास हल्का कर देता है उसी प्रकार गांव नगरों की वृत्तिहीनता के प्रति एक प्रकार की सुरक्षा (बीमा) प्रदान करते हैं।

ग्रामीण और नागरिक जीवन का संयोग दोनों (नगरों और गाँवों) के लिए हितकर होता है। इससे ग्रांमीण जीवन में बाहरी दुनिया का थोड़ा सा ज्ञान आ जाता है तथा पुरानी जर्जर प्रथाओं की श्रृंखला तोड़ने में सहायता मिलती है। इसी प्रकार नागरिकों को भारतीय जीवन की वास्तविकताओं का सूक्ष्म ज्ञान हो जाता है।

आधुनिक युग की सभ्यता के समक्ष, विशेषकर भारत में आज जनसंख्या बाहुल्यता का अतिशय रूप समाज के आर्थिक तथा सामाजिक विकास की प्रक्रिया में एक चेतावनी उद्घोषित कर रहा है। उसके निराकरण की दिशा में विश्व के समस्त बुद्धिजीवी प्रभावोत्पादक कार्यान्वयन के प्रयास विभिन्न उपचारों के माध्यम से निरन्तर कर रहें है, जिससे पारिवारिक एवं जनांकिकीय सुख प्राप्त हो सकें। जनसंख्या वृद्धि की अभिक्षाप्तता का गुणांक स्वरूप नियंत्रित करने के लिये परिवारनियोजन की प्रभावशाली प्रक्रिया का अनुमोदन देश के 990 मिलियन दम्पत्तियों के माध्यम से अनेक योजनाओं के अन्तर्गत किया है। किन्तु देश की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक भिन्नतायें, निम्न आर्थिक तथा शैक्षिक स्तर, उच्च शिशु एवं मातृत्व मरण दर तथा अपर्याप्त स्वास्थ्य एवम् संचार सेवाओं के कारण उपर्युक्त परिवार नियोजन कार्यक्रम अपने निर्धारित लक्ष्यों तथा उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर सका।

भारत में वर्तमान समय में जनाधिक्त की स्थिति स्पष्ट रूप से विद्यमान है और इसका प्रमुख कारण जन्म दर में वृद्धि और मृत्यु दर में कमी होनी है। गत कुछ वर्षों से भारत में स्वास्थ्य आदि सुविधाओं के विकास एवं विस्तार के फलस्वरूप मृत्यु दर में निरन्तर कमी आ रही है तथा जन्म दर में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इसका ही यह परिणाम है कि भारत आज जनसंख्या विस्फोट की स्थिति से गुजर रहा है। बहुत से औद्योगिक देश जिनकी जनसंख्या अधिक है तथा वृद्धि भी तीव्र गति से हो रही है उनमें से भारत भी एक ऐसा देश है जिस पर जनसंख्या का अत्यधिक भार है। भारत को दुनिया की भूमि का 2.4 प्रतिशत भाग मिला है जब कि आबादी लगभग 16.7 प्रतिशत है।

1981 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 68 करोड़ 50 लाख थी जो 1947 की 39 करोड़ 20 लाख की जनसंख्या से दुगनी हो गयी है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार केवल सन् 1991 से 2001 के बीच 16 करोड़ आबादी बढ़ी जो 84.64 करोड़ से बढ़कर 1.02 अरब हो गई। अर्थात केवल एक वर्ष में हमारे देश में श्री लंका जितनी आबादी बढ़ जाती है। भारतीय जनगणना 2001 के अनुसार 1 मार्च तक भारत की जनसंख्या 1 अरब 2 करोड़ 37 लाख थी अब 2011 में 1 अरब 20 करोड़ 12 लाख हो गई है, जबकि विश्व की कुल जनसंख्या 6 अरब 28 करोड़ 29 लाख है, जनसंख्या के मामलें में भारत विश्व में दूसरे स्थान पर है, पहला स्थान चीन का है।3इस समय भारत की जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या के 15 प्रतिशत के बराबर है जबकि उसके पास कुल भूमि क्षेत्र का 2.4 प्रतिशत है। पिछली शताब्दी के आरम्भ में जनसंख्या में वृद्धि दर नियंत्रित नहीं थी। जन्म दर की अपेक्षा मृत्यु दर अधिक थी। प्लेग, हैजा, मलेरिया जैसी बीमारियों और अकाल के कारण देश की आबादी कम हुई। वास्तव में 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक में जनसंख्या में कोई खास वृद्धि नहीं हुई। किन्तु देश इस समय ऐसी जनांककीय स्थिति से गुजर रहा है जब प्रजनन दर आम तौर पर काफी अधिक है और मृत्यु दर सामान्य है। जनसंख्या अध्ययनकर्ताओं के अनुसार आजादी के बाद जन्मदर प्रति 48 के मुकाबले घटकर 35 हो गई जबकि मृत्यु दर प्रति हजार घटकर 15 हो गई। इस समय जन्म दर 30 और मृत्यु दर 12 प्रति हजार है, और शिशु मृत्यु दर प्रति हजार जीवित बच्चों के पीछे 104 है।4 अतः आज प्रति व्यक्ति आय कम है और गरीबी का प्रकोप अधिक है। आबादी का एक तिहाई भाग गरीबी रेखा से नीचे है। महिला साक्षरता 53. 67 प्रतिशत है। देश की वर्तमान जनसंख्या 2001 की जनगणना` आधार पर निरन्तर वृद्धि की ओर गतिमान है। सम्भवतः यह लगभग 1.62 करोड़ प्रति वर्ष की दर से बढ़ रही है।

जनसंख्या की इस तीव्र वृद्धि से देश के समग्र सामाजिक, आर्थिक विकास के लिये गम्भीर समस्यायें पैदा हो रही है। राष्ट्रीय विकास और गरीबी निवारण सम्बन्धी प्रयत्नों की सफलता के लिये जनसंख्या नियंत्रण के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करना अति आवश्यक है। किसी भी देश का आर्थिक विकास होना तब तक कठिन है जब तक जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि जारी रहती है। अगर देश का भविष्य सुरक्षित रखना है, गरीबी को हटाना है तो जनसंख्या की समस्या को राष्ट्रीय प्राथमिकता देकर हल करना होगा।

भारत में बहुभाषी समाज रहता हे, इसकी जनांककीय स्थितियों और सामाजिक आर्थिक दशाओं में व्यापक भिन्नता है, लोग विभिन्न धर्मों को मानते है और उनकी बहुत सी सांस्कृतिक परम्परायें है। भिन्न–भिन्न प्रकार के सामाजिक रीति रिवाज और मान्यतायें परिवार के बड़े आकार के पक्ष में है और उनमें से अधिकांश,

गर्भ निरोध के आधुनिक तरीकों को अपनाने के विरूद्ध है। महिलाओं के विवाह की औसत आयु 18.7 वर्ष है जो बहुत कम है। अधिकांश गरीब लोग विशेषकर श्रमिक आर्थिक और अन्य दृष्टियों से बच्चों को अभी भी सम्पत्ति के रूप में समझते है। सबकी इच्छा होती है कि उनके कम से कम एक या दो पुत्र हो। प्रचलित जनांककी स्थिति सामाजिक आर्थिक दशाओं और व्यापक विभिन्नताओं के कारण जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम एक अत्यधिक चुनौतीपूर्ण कार्य बन गया है।

किसी भी देश की जनसंख्या का अनुमान जनसंख्या अध्ययन के तीन तथ्यों से बच्चे पैदा करने की क्षमता, मृत्यु दर, तथा देश में आवागन से आंका जाता है, फिर भी भारत जैसे देशों के लिये जनसंख्या सम्बन्धी समस्या का सही विवेचन, प्रजननता ही केवल एक तत्व है।

REFERENCES

1. Raina, BL "India's National Programme in Family Planning, Achievements and Problems" page 106 (Edited by B. Berels)
2. जनसंख्या संदेश भारतीय परिवार नियोजन संघ, नई दिल्ली शाखा पेज।
3. दैनिक हिन्दी मिलाप, नई देहली 26 मार्च 2001 पेज–4
4. राष्ट्रीय परिवार कल्याण कार्यक्रम की संशोधित कार्यनीति, परिवार कल्याण विभाग, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्राालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पेज–14
5. Sovani, M.V. "The Social Survey of Kolhapur City, Part I, The Gokhle Institute of Politics and Economics, No. 18, 1978, PP-57-60.
6. Department fo Statistics, Patna University Studyof Fertility in Patna City, 1985.
7. Dutta, S., Differential Fertility in West Bengal, Artha Vigyan, Vol. 3 No. 1, 1986, PP-74
8. Singh, Baljeet, "Fertility Planning Work in U.P." Report of the Proceedings of the 2nd All India Conference Family Planning Association of India, Bombay, 1958 PP-60-70
9. Chandra Shekhar, S. "Report of Survey of Attitudes of Married Couples Towards Family Planning in Pulupakkam area of City of Madras," Govt. of Madras Publication, Madras, 1979.
10. Dutta, S., Ibid.
11. Prakasi, K. and C.R. Malazar, "The relationship between family Type and Fertility" Milbank Memorial Fund Quarterly, Vol-XIV, No. 1967 PP 457.
12. "Study of Fertility in Rural Areas of Lucknow," J.K. Instittue of Sociology and Human, Relations,Lucknow University, Lucknow (1988).
13. Hussain, I.Z., "Fertility and Family Planning Practice in the City of Lucknow" (1978).
14. Mehra, A.N., Determinate of Fertility Level and Family Planning Programme. A.I.C.C. Eco Review, Vol. 20 No. 2 Page 11-12.
15. P.R.C. Lucknow, "A Study on Fertility and Family Planning Among White Collar Workers (1995) PP-7.
16. Khan, M.E., Determinate of Muslim Fertility in an Urban Area," Health and Population Programmed and Issue, Vol. I, January, 1998.
17. Singh, M. "Incensement and Economy Policy." Yojna, 1992 Page-4-10.
18. Majumdar, D.N., "social Contours of an Industrial City - Social Survey of Kanpur 1954-55, Asia Publishing House, Bombay, 1960 PP-174.
19. Kingslay Davis, "The Populationof India and Pakistan, Princeton University Press, 1951, PP-70-73.
20. Dandekar, V.M., "Survey of Fertility and Mortality in Poona District, Gokhle Institute of Politics and Economics, Publications No. 31, 1955 PP-108-158.
21. Lall, D.N., Demographic Study of Patna, Deptt. of Statistics, Patna, University, 1957.
22. Parthsharthy,N.R., "Fertility Decline in India during 1961-71. The Jornal of Family Welfare, Vol. XX Dec. 1973PP-68-73.
23. Mathews, C.M.E. (1976) "Health and Culture in South Indian Village", sterling Publishers Pvt. Ltd., New Delhi.

24. Dutta, P.R. and Takulia H.S., "Rural Health Centre in India : Primary Health Centres" Central Health Education Bureau, New Delhi.

नंदाणिया परबत वीरा
बी.ए., बी.एड., एम.ए., एम.फिल.